

(2009) 15 (अतिरिक्त) एस.सी.आर. 1168

राजेंद्र कृषि विश्वविद्यालय

बनाम

अशोक कुमार प्रसाद और अन्य

(2004 की दीवानी अपील संख्या 6937)

30 नवंबर 2009

[आर.वी. रवीन्द्रन और जी.एस. सिंघवी, न्यायमूर्तिगण]

सेवा कानून:

बिहार कृषि विश्वविद्यालय अधिनियम, 1987 - धारा 36 - के अंतर्गत बनाया गया कानून - शिक्षकों के लिए समयबद्ध पदोन्नति योजना का प्रावधान- कुलाधिपति द्वारा कानून को स्वीकृति दी गई, लेकिन आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित नहीं किया गया - निर्णय: कानून प्रभावी नहीं हुआ और आधिकारिक राजपत्र में इसके प्रकाशन के अभाव में लागू नहीं हो सका, जो कि धारा 36(4) के अनुसार अनिवार्य रूप से आवश्यक था - इसके अलावा, कुलाधिपति ने एक तर्कपूर्ण आदेश द्वारा उक्त कानून के संबंध में अपनी सहमति वापस ले ली - परिणामस्वरूप, उत्तरदाता-शिक्षक कानून के तहत समयबद्ध पदोन्नति योजना का लाभ पाने के हकदार नहीं हैं।

अपीलकर्ता विश्वविद्यालय बिहार कृषि विश्वविद्यालय अधिनियम, 1987 द्वारा शासित था। विश्वविद्यालय के प्रबंधन समिति ने अपने शिक्षकों के लिए समयबद्ध पदोन्नति योजना हेतु एक कानून बनाया था। विश्वविद्यालय के कुलाधिपति ने अधिनियम की धारा 36(2) के अंतर्गत उक्त कानून के संबंध में अपनी सहमति दी थी। हालांकि, मामला पुनर्विचाराधीन होने के कारण कानून को राजपत्र में प्रकाशित नहीं किया गया था। बाद में, पुनर्विचार के बाद, कुलाधिपति ने

उक्त क़ानून के संबंध में अपनी सहमति वापस ले ली और कहा कि यह अभी भी अजन्मा है, अनिर्धारित है और राजपत्र में प्रकाशन के अभाव में कभी लागू नहीं हुआ।

उत्तरदाता- शिक्षकों ने कुलाधिपति द्वारा पारित आदेश को चुनौती देते हुए विनिर्दिष्ट आदेश याचिकाएँ दायर की, जिन्हें उच्च न्यायालय ने इस आधार पर स्वीकार कर लिया कि एक बार जब कुलाधिपति ने अधिनियम की धारा 36 के तहत किसी क़ानून पर अपनी सहमति दे दी, तो उनके पास उस सहमति को वापस लेने का कोई अधिकार नहीं था। न्यायालय ने यह भी माना कि नए क़ानून का आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन केवल एक औपचारिकता थी, और जब कुलाधिपति ने प्रबंधन समिति द्वारा बनाए गए क़ानून पर अपनी सहमति दे दी, तो अपीलकर्ता विश्वविद्यालय द्वारा नियोजित शिक्षकों को उक्त क़ानून के अनुसार समयबद्ध पदोन्नति प्राप्त करने का एक निहित अधिकार प्राप्त हो गया और उन्हें इससे वंचित नहीं किया जा सकता था।

वर्तमान अपीलों में विचारार्थ निम्नलिखित प्रश्न उठे: (i) क्या अधिनियम की धारा 36(4) के अनुसार, राजपत्र में क़ानून के प्रकाशन के अभाव में, धारा 36(1) के अंतर्गत बनाया गया और धारा 36(2) के अंतर्गत स्वीकृत क़ानून प्रभावी हुआ और प्रवर्तनीय हुआ और (ii) क्या उत्तरदाता समयबद्ध पदोन्नति योजना के लाभ के हकदार थे।

अपीलों को स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने

यह निर्णय दिया: 1.1. बिहार कृषि विश्वविद्यालय अधिनियम, 1987 की धारा 35 उन विषयों से संबंधित है और उन्हें सूचीबद्ध करती है जिन पर विश्वविद्यालय द्वारा क़ानून बनाए जा सकते हैं। धारा 35(25) में प्रावधान है कि अधिनियम के प्रावधानों के अधीन, क़ानून विश्वविद्यालय के अधीन कार्यरत शिक्षकों को दी जाने वाली सेवा की शर्तों, पारिश्रमिक और

भक्तों का प्रावधान कर सकते हैं। दूसरी ओर, अधिनियम की धारा 36 यह बताती है कि कानून कैसे बनाए जाने हैं। धारा 36 कानून बनाने या संशोधित करने के लिए तीन चरण निर्धारित करती है। ये हैं: (क) कानून को उप-धारा (1) में निर्दिष्ट तरीके से प्रबंधन समिति द्वारा बनाया जाना चाहिए; (ख) कानून को कुलाधिपति द्वारा अनुमोदित और स्वीकृत किया जाना चाहिए और (ग) इस प्रकार बनाया और स्वीकृत किया गया कानून आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित किया जाएगा। [कंडिका 8 और 9] [1176-ई-एफ; 1177-जी-एच; 1178-ए-बी]

1.2. जब अधिनियम में यह निर्धारित किया गया हो कि अधिनियम के अंतर्गत कोई कानून किस प्रकार बनाया जाना चाहिए, तो उसे उसी प्रकार बनाया जाना चाहिए, किसी अन्य तरीके से नहीं। यह आवश्यकता कि कानून आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित किया जाना चाहिए, अधिनियम की धारा 36 के अंतर्गत 'कानून निर्माण' की प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है। यह अनिवार्य है, निर्देशिका नहीं। आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन तक, कानून को अभी भी निर्माण की प्रक्रिया में माना जाएगा, भले ही उसे कुलाधिपति की स्वीकृति प्राप्त हो गई हो। 'निर्माणाधीन कानून' या 'प्रक्रियाधीन कानून' अपूर्ण है और कानून के रूप में न तो मान्य है और न ही प्रभावी। जब तक कानून पूरी तरह से नहीं बना है, बल्कि अभी भी निर्माण की प्रक्रिया में है, तब तक इसे रद्द किया जा सकता है, बिना ऐसे रद्दीकरण, वापसी या संशोधन के 'प्रकाशन' की आवश्यकता के वापस लिया जा सकता है या संशोधित किया जा सकता है। [कंडिका 9][1178-8-एफ]

1.3. अपीलकर्ता विश्वविद्यालय को जिन कानूनों को बनाने का अधिकार है, उनमें से कई ऐसे विषयों से संबंधित हैं जो सार्वजनिक क्षेत्र में आते हैं और आम जनता को प्रभावित या प्रासंगिक करते हैं। यदि इन विषयों पर बनाए गए कानून राजपत्र में प्रकाशित नहीं किए जाते हैं, तो संबंधित व्यक्तियों को उनके बारे में कभी पता नहीं चल सकता है। इसलिए, धारा 36(4)

में निहित प्रावधान, जो कानूनों को राजपत्र में प्रकाशित करने की आवश्यकता रखता है, जो विश्वविद्यालय द्वारा बनाए गए सभी कानूनों पर लागू होता है, को अनिवार्य माना जाना चाहिए। यह तथ्य कि कोई विशेष कानून आम जनता से संबंधित नहीं हो सकता है, बल्कि केवल कर्मचारियों के एक विशिष्ट वर्ग को प्रभावित कर सकता है, अधिनियम की धारा 36(4) में किसी अपवाद के अभाव में, उस कानून पर राजपत्र में प्रकाशन की अनिवार्य आवश्यकता की प्रयोज्यता को बाहर करने का आधार नहीं है। [कंडिका 12] [1180-सी, जी-एच; 1181-ए-बी]

1.4. उत्तरदाता किसी वैधानिक प्रावधान को बनाने के कारणों, या वैधानिक प्रावधान बनाने के उद्देश्य का हवाला देकर, उस वैधानिक प्रावधान की विशिष्ट और स्पष्ट अनिवार्य आवश्यकताओं को नकारने का प्रयास नहीं कर सकते। सभी विधियों को राजपत्र में प्रकाशित करने का प्रावधान करने वाले वैधानिक प्रावधान को बनाने में कई कारण हो सकते हैं। ये सभी कारण किसी एक विधि के निर्माण के संबंध में लागू या मौजूद नहीं भी हो सकते हैं। लेकिन एक बार जब कानून यह निर्धारित कर देता है कि राजपत्र में किसी विधि का प्रकाशन, विधि बनाने की प्रक्रिया का एक हिस्सा है, तो प्रकाशन के लिए ऐसा प्रावधान करने का उद्देश्य पृष्ठभूमि में चला जाता है और अप्रासंगिक हो जाता है, और दूसरी ओर, राजपत्र में प्रकाशन द्वारा विधि को सार्वजनिक करने की आवश्यकता की पूर्ति अनिवार्य और बाध्यकारी हो जाती है। [कंडिका 13] [1181-0-जी]

1.5. इस तर्क को स्वीकार करना संभव नहीं है कि प्रश्नगत कानून आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन के अभाव में भी प्रभावी या लागू हो गया। उच्च न्यायालय ने यह मानते हुए त्रुटि की कि शिक्षक समयबद्ध पदोन्नति योजना से संबंधित कानून के लाभ के हकदार हो गए, जब प्रबंधन समिति द्वारा बनाए गए उक्त कानून को कुलाधिपति ने सहमति दे दी थी, भले ही वह राजपत्र में प्रकाशित नहीं हुआ था। उच्च न्यायालय ने यह कहते हुए भी त्रुटि की कि प्रकाशन

न करना अनुचित और मनमाना था, क्योंकि इसने कुलाधिपति द्वारा अपने आदेश में अपूर्ण कानून पर अपनी सहमति वापस लेने के लिए दिए गए वैध कारणों की अनदेखी की। [कंडिका 16][1186-0-जी]

बी.के. श्रीनिवासन बनाम कर्नाटक राज्य 1987 (1) एससीसी 658 और आइ.टी.सी. भद्राचलम पेपरबोर्ड्स बनाम मंडल राजस्व अधिकारी, आंध्र प्रदेश 1996 (6) एससीसी 634, अवलंबित।

नज़ीर सन्दर्भ:

1987 (1) एससीसी 658	अवलंबित	कंडिका 14
1996 (6) एससीसी 634	अवलंबित	कंडिका 15

दीवानी अपीलिय क्षेत्राधिकार: 2004 का दीवानी अपील संख्या 6937

पटना उच्च न्यायालय के दिनांक 18.7.2003 के निर्णय एवं आदेश से, 1998 का दीवानी रिट क्षेत्राधिकार संख्या 1007

के साथ

2004 का सी.ए. संख्या 6933, 6934, 6935, 6936, 6938।

अपीलकर्ता की ओर से के.के. राय, अम्भोज कुमार सिन्हा।

उत्तरदाताओं की ओर से पी.एस. मिश्रा, एम.के. चौधरी, नमिता चौधरी, डॉ. एस.के. वर्मा, मनीष कुमार, गोपाल सिंह, बी.बी. सिंह।

न्यायालय का निर्णय

आर.वी. रवींद्रन, न्यायमूर्ति द्वारा दिया गया: 1. इन अपीलों में शामिल मुद्दा यह है कि क्या बिहार कृषि विश्वविद्यालय अधिनियम, 1987 की धारा 36 के तहत बनाया गया एक कानून, जो शिक्षण कर्मचारियों को लाभ प्रदान करता है, जिसके लिए कुलाधिपति द्वारा सहमति दी गई है, आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन के अभाव में लागू किया जा सकता है।

2. अपीलकर्ता एक कृषि विश्वविद्यालय है जो बिहार कृषि विश्वविद्यालय अधिनियम, 1987 (संक्षेप में 'अधिनियम') द्वारा शासित है। सेवा में ठहराव का सामना कर रहे अपने शिक्षण कर्मचारियों को अनुतोष प्रदान करने के लिए, अपीलकर्ता विश्वविद्यालय के प्रबंधन समिति ने दिनांक 22.7.1989 की अपनी बैठक में एक कानून बनाया जिसमें समयबद्ध पदोन्नति योजना का प्रावधान किया गया। प्रस्तावित कानून को अधिनियम की धारा 36(2) के अंतर्गत विश्वविद्यालय के कुलाधिपति के समक्ष उनकी सहमति हेतु प्रस्तुत किया गया और 17.8.1991 को उनकी सहमति प्रदान की गई। इसके अनुसरण में, विश्वविद्यालय ने दिनांक 4.9.1991 को एक अधिसूचना (एन.सं.106/आरएयू) जारी की, जिसमें राजेंद्र कृषि विश्वविद्यालय के कानून के अध्याय XIV के कानून 14.1 में एक अतिरिक्त संशोधन किया गया, जिसमें (i) सहायक प्राध्यापकों/कनिष्ठ वैज्ञानिकों को सह प्राध्यापक/ वरिष्ठ वैज्ञानिक के पद पर और (ii) सह प्राध्यापक/वरिष्ठ वैज्ञानिक को विश्वविद्यालय के प्राध्यापक/मुख्य वैज्ञानिक के पद पर समयबद्ध पदोन्नति का प्रावधान किया गया। उक्त संविधि 14.1 में किया गया संशोधन सरकारी राजपत्र में प्रकाशित नहीं किया गया था, क्योंकि यह मामला राज्य सरकार द्वारा कृषि विश्वविद्यालयों के शिक्षकों के संबंध में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (संक्षेप में 'यूजीसी') के वेतनमान लागू करने के निर्णय के मद्देनजर पुनर्विचाराधीन था। कुलाधिपति ने एक आदेश भी पारित किया, जिसे कृषि विश्वविद्यालयों के कुलपतियों को पत्र दिनांक 6.2.1992 द्वारा सूचित

किया गया था कि उक्त संविधि का संचालन अगले आदेश तक लंबित रखा जाए क्योंकि पूरा मामला समीक्षाधीन है और आगे विचाराधीन है।

3. व्यथित होकर, राजेंद्र कृषि विश्वविद्यालय शिक्षक मंच, जो शिक्षकों का एक संगठन है, ने एक विनिर्दिष्ट आदेश याचिका (दीवानी रिट क्षेत्राधिकार संख्या 9622/1992) दायर की, जिसमें कुलाधिपति के दिनांक 6.2.1992 के उक्त आदेश को चुनौती दी गई और विश्वविद्यालय को निर्देश देने की मांग की गई कि वह अपने सदस्यों के पदोन्नति के मामलों पर दिनांक 4.9.1991 की अधिसूचना के अनुसार अतिरिक्त कानून के अनुसार विचार करे। पटना उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 17.3.1994 के आदेश द्वारा यह माना कि अतिरिक्त कानून से संबंधित दिनांक 4.9.1991 की अधिसूचना प्रभावी नहीं हुई क्योंकि वह आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित नहीं हुई थी और इसलिए, ऐसे अप्रकाशित कानून के आधार पर किसी अधिकार का दावा नहीं किया जा सकता। इसलिए, विनिर्दिष्ट आदेश याचिका को इस स्पष्टीकरण के साथ खारिज कर दिया गया कि दिनांक 6.2.1992 का आक्षेपित आदेश एक अंतरिम आदेश होने के कारण, विनिर्दिष्ट आदेश याचिका को खारिज करने से कुलाधिपति द्वारा कानून के अनुसार इस मुद्दे पर उचित अंतिम निर्णय लेने में कोई बाधा नहीं आएगी। उच्च न्यायालय की रांची पीठ के समक्ष दायर दो विनिर्दिष्ट आदेश याचिकाओं [दीवानी रिट क्षेत्राधिकार संख्या 3096/1992 (आर) और दीवानी रिट क्षेत्राधिकार संख्या 2740/1995 (आर)] का इस निर्देश के साथ निपटारा किया गया कि विनिर्दिष्ट आदेश याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए मुद्दे पर कुलाधिपति द्वारा विचार किया जा सकता है और पक्षों की सुनवाई के बाद निर्णय लिया जा सकता है।

4. इसके बाद, कुलाधिपति ने अभ्यावेदनों पर विचार किया, सुनवाई की और दिनांक 19.3.1996 को एक आदेश पारित किया जिसमें कहा गया कि यह कानून अभी भी अजन्मा है,

अनिर्धारित है और अधिनियम की धारा 36 के तहत आवश्यक आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन के अभाव में कभी लागू नहीं हुआ। उक्त आदेश में यह उल्लेख किया गया कि कई विश्वविद्यालयों ने पहले समयबद्ध पदोन्नति योजनाएँ अपनाई थीं, लेकिन बाद में उन्हें छोड़ दिया क्योंकि वे यूजीसी की करियर उन्नति योजना और व्याख्याताओं को वरिष्ठ वेतनमान में रखने की यूजीसी योजना के साथ असंगत पाई गई; और उनके स्थान पर, यूजीसी की योजनाओं के अनुरूप योजनाएँ/कानून राज्य सरकार की सिफारिशों पर बनाए गए। उन्होंने निम्नलिखित कारण भी बताए कि प्रस्तावित कानून के तहत समयबद्ध पदोन्नति योजना बिहार के कृषि विश्वविद्यालयों में क्यों लागू नहीं की जा सकती:

"मेरे ध्यान में लाया गया है कि आईसीएआर ने कृषि विश्वविद्यालयों के कुलपतियों को एक निर्देश भेजा है कि आईसीएआर नए यूजीसी वेतनमान में निहित करियर उन्नति योजना के तहत पदोन्नति की लागत वहन कर सकता है, लेकिन इसके अलावा, आईसीएआर किसी अन्य प्रकार की पदोन्नति या चयन के लिए धन के किसी भी अनुरोध पर विचार नहीं करेगा। आईसीएआर योजना में भी पदोन्नति के लिए अंतर्निहित प्रावधान हैं। इसलिए, आईसीएआर योजना के साथ समयबद्ध पदोन्नति योजना शुरू करने से लाभ दोगुना हो सकता है।

यह ध्यान देने योग्य है कि यूजीसी योजना के तहत समयबद्ध पदोन्नति का कोई प्रावधान नहीं है और न ही आईसीएआर ने प्रत्येक योजना की परिकल्पना की है। कृषि विश्वविद्यालयों और राज्य सरकार ने कृषि विश्वविद्यालयों के लिए संशोधित यूजीसी वेतनमान को लागू करते समय यूजीसी/आईसीएआर के नियमों और शर्तों को स्वीकार किया है, और राज्य सरकार के कृषि विभाग द्वारा समय-समय पर जारी किए गए सरकारी आदेशों के नियमों और शर्तों में, यह निरंतर नीति रही है कि

आईसीएआर दिशानिर्देश का पालन किया जाएगा। इसके अलावा, आईसीएआर ने कृषि विश्वविद्यालयों को स्पष्ट रूप से निर्देश दिया है कि वे आईसीएआर द्वारा वित्तपोषित योजनाओं के लिए नियुक्त/प्रतिनियुक्त शिक्षकों को समयबद्ध पदोन्नति देने का कोई बोझ नहीं उठाएंगे।"

कुलाधिपति के दिनांक 19.3.1996 के उक्त आदेश में यह भी दर्ज किया गया था कि यह विद्वान एकल न्यायाधीश के दिनांक 17.3.1994 के आदेश के विरुद्ध लंबित अपील (एलपीए संख्या 35/94) के निर्णय के अधीन था। उक्त लेटर्स पेटेंट अपील को बाद में उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने 11.9.1997 को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि शिक्षक संघ विश्वविद्यालय कर्मचारियों के सेवा विवाद से संबंधित विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर करने का हकदार नहीं है। हालांकि, यदि शिक्षक व्यथित थे, तो उन्हें अनुतोष मांगने की स्वतंत्रता सुरक्षित थी।

5. इसके बाद, कई शिक्षकों ने विनिर्दिष्ट आदेश याचिकाएँ दायर की कुलाधिपति द्वारा पारित दिनांक 19.3.1996 के आदेश को चुनौती देते हुए, और दिनांक 4.9.1991 की अधिसूचना के संदर्भ में अनुतोष की माँग की। उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने उत्तरदाताओं - शिक्षकों द्वारा दायर विनिर्दिष्ट आदेश याचिकाओं के समूह को अनुमति दे दी। इसने माना कि एक बार जब कुलाधिपति ने अधिनियम की धारा 36 के तहत किसी कानून पर अपनी सहमति दे दी, तो उनके पास उस सहमति को वापस लेने का कोई अधिकार नहीं है। इसने माना कि अधिसूचना को राजपत्र में प्रकाशित करने से इनकार करने के बजाय अधिसूचना जारी करना अनुचित और कानून के शासन का उल्लंघन है। उच्च न्यायालय ने यह भी माना कि नए कानून का आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन केवल एक औपचारिकता थी, और जब कुलाधिपति ने प्रबंधन समिति द्वारा तैयार कानून पर अपनी सहमति दे दी, तो विश्वविद्यालय

द्वारा नियोजित शिक्षकों को उक्त क़ानून के अनुसार समयबद्ध पदोन्नति प्राप्त करने का एक निहित अधिकार मिल गया और उन्हें इससे वंचित नहीं किया जा सकता था। इसलिए उच्च न्यायालय ने घोषित किया कि यद्यपि संविधि में संशोधन वाली 4.9.1991 की अधिसूचना, आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित नहीं हुई थी, फिर भी शिक्षक अधिसूचना के अनुसार, 1.4.1987 से अधिसूचना के तहत लाभ के हकदार हैं।

6. उक्त आदेश को इन अपीलों में चुनौती दी गई है। अपीलकर्ता विश्वविद्यालय का तर्क है कि प्रबंधन समिति द्वारा पारित कोई क़ानून बनाने का प्रस्ताव, भले ही कुलाधिपति द्वारा स्वीकृत हो, अधिनियम के तहत पारित 'क़ानून' नहीं होगा, जब तक कि उसे आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचित न कर दिया जाए। इसके अलावा, चूँकि कुलाधिपति ने 19.3.1996 के एक तर्कपूर्ण आदेश द्वारा सहमति वापस ले ली थी, इसलिए कोई 'क़ानून' ही नहीं था। यह भी तर्क दिया गया कि शिक्षकों की पदोन्नति के लिए एक नई करियर उन्नति योजना, संशोधित यूजीसी वेतनमानों के अनुसार विश्वविद्यालय के संबंधित क़ानूनों में संशोधन करके लागू की गई थी; और उत्तरदाताओं ने पहले ही यूजीसी वेतनमान योजना का विकल्प चुन लिया है, जो 30.3.1990 को शुरू की गई थी, प्रस्तावित समयबद्ध पदोन्नति योजना लागू नहीं होगी, भले ही क़ानून अधिसूचित हो गया हो।

7. प्रस्तुत तर्कों के आधार पर, निम्नलिखित प्रश्न विचारार्थ उठता है:

- (i) अधिनियम की धारा 36(4) के अनुसार, राजपत्र में क़ानून के प्रकाशन के अभाव में, क्या धारा 36(1) के अंतर्गत बनाया गया और धारा 36(2) के अंतर्गत स्वीकृत क़ानून प्रभावी हुआ और प्रवर्तनीय हो गया?

(ii) क्या उत्तरदाता दिनांक 4.9.1991 की अधिसूचना के अंतर्गत समयबद्ध पदोन्नति योजना के लाभ के हकदार हैं?

8. अधिनियम की धारा 35 उन विषयों से संबंधित है और उन्हें सूचीबद्ध करती है जिन पर विश्वविद्यालय द्वारा कानून बनाए जा सकते हैं। धारा 35(25) में प्रावधान है कि अधिनियम के प्रावधानों के अधीन, कानून विश्वविद्यालय के अंतर्गत कार्यरत शिक्षकों को दी जाने वाली सेवा की शर्तों, पारिश्रमिक और भत्तों का प्रावधान कर सकते हैं। अधिनियम की धारा 36 यह बताती है कि कानून कैसे बनाए जाएँगे। नीचे उद्धृत है:

"36. कानून कैसे बनाए जाते हैं: (1) प्रबंधन समिति समय-समय पर नए या अतिरिक्त कानून बना सकता है या इस धारा में आगे वर्णित तरीके से कानूनों में संशोधन या निरसन कर सकता है।

बशर्ते कि, प्रबंधन समिति किसी मौजूदा प्राधिकरण के कानूनों, शक्तियों या गठन को प्रभावित करने वाले किसी कानून या संशोधन को तब तक नहीं बनाएगा जब तक कि ऐसे प्राधिकरण को प्रस्ताव पर अपनी राय व्यक्त करने का अवसर न दिया गया हो और इस प्रकार व्यक्त की गई कोई भी राय लिखित रूप में होगी और प्रबंधन समिति द्वारा उस पर विचार किया जाएगा;

बशर्ते कि प्रबंधन समिति द्वारा शिक्षा और परीक्षा के अनुशासन को प्रभावित करने वाला कोई भी कानून शैक्षणिक परिषद के परामर्श के बाद ही बनाया जाएगा।

(2) प्रत्येक नए कानून या कानून में किसी संशोधन या कानून के निरसन के लिए कुलाधिपति का अनुमोदन आवश्यक होगा, जो उस पर अपनी सहमति दे सकते हैं या अपनी सहमति रोक सकते हैं या उसे पुनर्विचार के लिए प्रबंध विभाग को भेज सकते हैं।

(3) कोई नया क़ानून या किसी मौजूदा क़ानून को संशोधित या निरस्त करने वाला क़ानून तब तक वैध नहीं होगा जब तक कि उसे कुलाधिपति द्वारा अनुमति न दे दी गई हो।

(4) इस अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए सभी क़ानून आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित किए जाएँगे।

बिहार और उड़ीसा सामान्य खंड अधिनियम, 1917, अधिसूचना को "राजपत्र में अधिसूचना" के रूप में परिभाषित करता है। [धारा 2 के खंड (36) देखें]। उक्त सामान्य खंड अधिनियम की धारा 28 में प्रावधान है:

"28. राजपत्र में आदेशों और अधिसूचनाओं का प्रकाशन: जहाँ किसी बिहार और उड़ीसा अधिनियम या बिहार अधिनियम या ऐसे किसी अधिनियम के अधीन बनाए गए किसी नियम में यह निर्देश दिया गया है कि कोई आदेश, अधिसूचना या अन्य विषय अधिसूचित या प्रकाशित किया जाएगा, वहाँ ऐसी अधिसूचना या प्रकाशन, जब तक कि अधिनियम में अन्यथा उपबंध न हो, राजपत्र में प्रकाशित होने पर विधिवत रूप से किया गया माना जाएगा।"

9. धारा 36 किसी क़ानून को बनाने या संशोधित करने के लिए तीन चरण निर्धारित करती है। वे हैं:

(क) प्रबन्ध समिति द्वारा उप-धारा (1) में निर्दिष्ट तरीके से परिनियम बनाया जाना चाहिए;

(ख) परिनियम को कुलाधिपति द्वारा अनुमोदित और स्वीकृत किया जाना चाहिए;

(ग) इस प्रकार निर्मित और स्वीकृत परिनियम को राजपत्र में प्रकाशित किया जाएगा।

जब अधिनियम में यह निर्धारित किया गया हो कि अधिनियम के अंतर्गत कोई परिनियम किस प्रकार बनाया जाना चाहिए, तो उसे उसी तरीके से बनाया जाना चाहिए, किसी अन्य तरीके से नहीं। यह आवश्यकता कि परिनियम को राजपत्र में प्रकाशित किया जाना चाहिए, अधिनियम की धारा 36 के अंतर्गत 'परिनियम निर्माण' की प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है। यह अनिवार्य है, निर्देशिका नहीं। राजपत्र में प्रकाशन होने तक, परिनियम को अभी भी बनने की प्रक्रिया में माना जाएगा, भले ही उसे कुलाधिपति की सहमति प्राप्त हो गई हो। 'निर्माणाधीन परिनियम' या 'प्रक्रियाधीन परिनियम' अपूर्ण है और एक परिनियम के रूप में न तो वैध है और न ही प्रभावी। जब तक कानून पूरी तरह से नहीं बन जाता, बल्कि अभी भी बनने की प्रक्रिया में है, तब तक इसे रद्द, वापस या संशोधित किया जा सकता है, बिना किसी 'प्रकाशन' के, जैसे कि रद्दीकरण, वापसी या संशोधन। कुलाधिपति ने 'प्रक्रियाधीन कानून' को लंबित रखा और बाद में इस पर पुनर्विचार किया और माना कि समयबद्ध पदोन्नति योजना का प्रस्ताव करने वाला कानून अभी भी अजन्मा और अनिर्धारित था।

10. उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अधिनियम की धारा 36 में राजपत्र में प्रकाशन से संबंधित आवश्यकता को, संदर्भ के अनुसार, निर्देशिका माना जाना चाहिए, न कि अनिवार्य। उन्होंने प्रस्तुत किया कि धारा 36 की उपधारा (2) के तहत किसी कानून के लिए कुलाधिपति की सहमति की आवश्यकता और धारा 36 की उपधारा (4) के तहत राजपत्र में कानून के प्रकाशन से संबंधित आवश्यकता के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर है। उन्होंने बताया कि उपधारा (3) यह स्पष्ट करती है कि उपधारा (2) के तहत कुलाधिपति की सहमति के अभाव में, कानून वैध नहीं है। इस प्रकार, कुलाधिपति की सहमति से संबंधित आवश्यकता का पालन न करने का परिणाम धारा में ही निर्दिष्ट किया गया था। दूसरी ओर, यद्यपि धारा 36 की उपधारा (4) के अनुसार यह आवश्यक है कि कानून को राजपत्र में प्रकाशित किया जाए,

उपधारा (3) के समान कोई प्रावधान नहीं है जो यह प्रावधान करता हो कि कानून तब तक वैध नहीं होगा जब तक कि इसे राजपत्र में प्रकाशित न किया जाए। इसलिए उन्होंने तर्क दिया कि कानून पर कुलपति की सहमति से संबंधित आवश्यकता अनिवार्य थी, लेकिन राजपत्र में प्रकाशन केवल निर्देशिका थी।

11. उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता ने स्वीकार किया कि किसी अधीनस्थ विधान को सरकारी राजपत्र में प्रकाशित करने का उद्देश्य अधिसूचना का प्रचार करना और उस अधिसूचना की विषय-वस्तु को प्रमाणिकता प्रदान करना है, यदि उसकी विषय-वस्तु के संबंध में कोई विवाद उत्पन्न होता है। लेकिन उन्होंने यह तर्क दिया कि यदि कोई अधीनस्थ विधान दायित्व आरोपित करता है, या देनदारियाँ उत्पन्न करता है, या कर्तव्यों के पालन की अपेक्षा करता है, और निष्पादन न करने पर दंड का प्रावधान करता है, तो राजपत्र में उसका प्रकाशन अनिवार्य माना जाएगा, क्योंकि किसी भी व्यक्ति से कर्तव्यों और दायित्वों के पालन की अपेक्षा नहीं की जा सकती और न ही उसे दंड दिया जा सकता है, जब तक कि उसे ऐसे प्रावधानों का ज्ञान न हो; और इसलिए, ऐसे अधीनस्थ विधान को जनता के लिए अधिसूचित करना अनिवार्य आवश्यकता थी और राजपत्र में प्रकाशन सभी संबंधितों के लिए सूचना माना जाता है। लेकिन दूसरी ओर, यदि आदेश या अधिसूचना का उद्देश्य केवल विशिष्ट और सीमित वर्ग के व्यक्तियों, जैसे किसी विशेष संगठन के कर्मचारियों को लाभ पहुँचाना है, तो लाभार्थियों को अन्य तरीकों से सूचित करना या सूचित करना पर्याप्त हो सकता है, जैसे कि आदेश को सूचना पट्ट पर प्रदर्शित करना या इच्छित लाभार्थियों के बीच प्रसारित करना; और ऐसे मामलों में, सीमित अनुप्रयोग वाले अधीनस्थ विधान, यदि कोई प्रावधान है जिसके तहत आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन की आवश्यकता है, तो ऐसी आवश्यकता को निर्देशिका के रूप में और केवल औपचारिकता के रूप में माना जाएगा। इसलिए उन्होंने यह तर्क दिया कि यह सिद्धांत कि कोई

अधीनस्थ कानून जो प्रकाशित नहीं होता है, वह जनता के किसी भी सदस्य के विरुद्ध प्रभावी या लागू नहीं हो सकता है, जनता को जानकारी के अभाव में, प्रकाशन के अभाव में, तब लागू नहीं हो सकता जब कोई कानून, जैसा कि इस वाद में है, एक विशिष्ट और छोटे वर्ग के व्यक्तियों, यानी विश्वविद्यालय के शिक्षण संकाय के लाभ के लिए बनाया गया हो, और उक्त कानून के निर्माण की जानकारी अन्यथा सभी शिक्षण संकायों को हो, और जिन शिक्षकों के लाभ के लिए इसे बनाया गया है, वे कानून के कार्यान्वयन की मांग करते हैं। यह तर्क दिया गया कि ऐसे वाद में, आधिकारिक राजपत्र में कानून का प्रकाशन न होना इसके कार्यान्वयन के लिए आपत्ति के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

12. हमने उत्तरदाताओं के तर्क पर ध्यानपूर्वक विचार किया है। विश्वविद्यालय को जिन कानूनों को बनाने का अधिकार है, उनमें से कई ऐसे विषयों से संबंधित हैं जो सार्वजनिक क्षेत्र में आते हैं, आम जनता को प्रभावित करते हैं या उनके लिए प्रासंगिक हैं। उदाहरण के लिए, धारा 35 की मद (4) शिक्षकों और अन्य गैर-शिक्षण कर्मचारियों के वर्गीकरण, योग्यता और नियुक्ति के तरीके से संबंधित है। मद (9) कुलपति के अलावा अन्य अधिकारियों की नियुक्ति और चयन के तरीके और उनकी शक्तियों, सेवा की शर्तों और नियमों से संबंधित है। मद (16) विश्वविद्यालय में छात्रों के प्रवेश या प्रवेश और उनके नामांकन और उसी रूप में बने रहने और छात्र को नामांकन से हटाने की शर्तों और प्रक्रिया से संबंधित है। मद (17) विश्वविद्यालय द्वारा ली जा सकने वाली शुल्क से संबंधित है। मद (21) विश्वविद्यालय के छात्रों के बीच अनुशासन बनाए रखने से संबंधित है। मद (26) परीक्षा निकायों और परीक्षकों की नियुक्ति की शर्तों और तरीके और कर्तव्यों से संबंधित है। विश्वविद्यालय सेवा में शिक्षक, गैर-शिक्षण कर्मचारी या अधिकारी के रूप में नियुक्ति में रुचि रखने वाला कोई भी व्यक्ति पद के लिए निर्धारित योग्यताएँ और चयन एवं नियुक्ति की विधि/तरीके जानने का हकदार है। छात्र या भावी छात्र

विश्वविद्यालय द्वारा ली जाने वाली शुल्क जानने के हकदार हैं। छात्रों में अनुशासन बनाए रखने के लिए बनाया गया कानून छात्र समुदाय के एक बड़े समूह से संबंधित है जो समय-समय पर बदलता रहता है। यदि इन विषयों पर बनाए गए कानून आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित नहीं किए जाते हैं, तो संबंधित व्यक्तियों को उनके बारे में कभी पता नहीं चल सकता है। इसलिए, धारा 36(4) में निहित प्रावधान, जिसके तहत आधिकारिक राजपत्र में कानूनों के प्रकाशन की आवश्यकता होती है, जो विश्वविद्यालय द्वारा बनाए गए सभी कानूनों पर लागू होता है, को अनिवार्य माना जाना चाहिए। यह तथ्य कि कोई विशेष कानून आम जनता से संबंधित नहीं हो सकता है, लेकिन केवल कर्मचारियों के एक निर्दिष्ट वर्ग को प्रभावित कर सकता है, अधिनियम की धारा 36(4) में किसी अपवाद के अभाव में, उस कानून पर आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन की अनिवार्य आवश्यकता की प्रयोज्यता को बाहर करने का आधार नहीं है।

13. इस प्रश्न को एक अन्य दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है। उत्तरदाताओं द्वारा प्रस्तुत तर्क विधायिका के लिए यह निष्कर्ष निकालने का अच्छा आधार हो सकते हैं कि जब वे विश्वविद्यालय के कर्मचारियों के एक छोटे से वर्ग से संबंधित हों, तो आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन के लिए अधिनियम में कोई प्रावधान होना आवश्यक नहीं है और परिणामस्वरूप, धारा 36(4) में संशोधन करके ऐसे मामलों में प्रकाशन का एक सरल तरीका प्रदान किया जा सकता है। लेकिन ये तर्क यह मानने के लिए प्रासंगिक आधार नहीं हैं कि आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन से संबंधित वैधानिक रूप से अधिनियमित अनिवार्य आवश्यकता निर्देशिका है। उत्तरदाता किसी वैधानिक प्रावधान को बनाने के कारणों या वैधानिक प्रावधान बनाने के उद्देश्य का हवाला देकर उस वैधानिक प्रावधान की विशिष्ट और स्पष्ट अनिवार्य आवश्यकताओं को विफल करने का प्रयास नहीं कर सकते। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, सभी विधियों को आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित करने का प्रावधान करने वाले वैधानिक प्रावधान को

बनाने में कई कारणों का योगदान हो सकता है। ये सभी कारण किसी एक विधि के निर्माण के संबंध में लागू या मौजूद नहीं हो सकते हैं। लेकिन एक बार जब कानून यह निर्धारित कर देता है कि किसी कानून का सरकारी राजपत्र में प्रकाशन, कानून बनाने की प्रक्रिया का एक हिस्सा है, तो प्रकाशन के लिए ऐसा प्रावधान करने का उद्देश्य पृष्ठभूमि में चला जाता है और अप्रासंगिक हो जाता है, और दूसरी ओर, कानून को सरकारी राजपत्र में प्रकाशित करके सार्वजनिक करने की आवश्यकता को पूरा करना अनिवार्य और बाध्यकारी हो जाता है। हम इस स्थिति को एक उदाहरण से स्पष्ट कर सकते हैं:

यदि किसी दो-तरफ़ा सड़क को एक-तरफ़ा सड़क घोषित किया जाता है, तो ऐसी घोषणा का कारण यह हो सकता है कि यातायात भारी था और दो-तरफ़ा यातायात अराजकता पैदा कर रहा था, रुकावटें पैदा कर रहा था और यातायात के सुचारू प्रवाह में बाधा डाल रहा था। सड़क को एक-तरफ़ा सड़क घोषित करने का उद्देश्य यातायात को सुगम बनाना और सड़क सुरक्षा और यातायात अनुशासन प्रदान करना हो सकता है। लेकिन एक बार जब सड़क को एक-तरफ़ा घोषित कर दिया जाता है, गलत रास्ते पर गाड़ी चलाने के अपराध का आरोपी कार चालक, यह तर्क देकर अपने गलत कृत्य का बचाव नहीं कर सकता कि जब वह गलत रास्ते पर जा रहा था, सड़क पर ज़्यादा यातायात नहीं था, और इसलिए, सड़क को एक-तरफ़ा घोषित करने की कोई ज़रूरत नहीं थी और सड़क को एक-तरफ़ा घोषित करना निर्देशिका या वैकल्पिक माना जाना चाहिए। एक बार जब सड़क को एक-तरफ़ा घोषित कर दिया जाता है, तो भले ही उस पर ज़्यादा यातायात न हो, वाहन चालकों को इसे एक-तरफ़ा सड़क के रूप में ही इस्तेमाल करना चाहिए। यदि कोई उपाय है तो वह यह है कि आवश्यकता को निर्देशात्मक या

वैकल्पिक न माना जाए, बल्कि संबंधित प्राधिकारी को घोषणा को पीक आवर्स तक सीमित रखने के लिए बाध्य किया जाए।

14. बी.के. श्रीनिवासन बनाम कर्नाटक राज्य - 1987 (1) एससीसी 658 में, इस न्यायालय ने स्पष्ट किया कि अधीनस्थ विधानों के संबंध में राजपत्र में प्रकाशन अनिवार्य और आवश्यक क्यों था:

"इस प्रस्ताव पर कोई संदेह नहीं हो सकता कि जहाँ कोई कानून, चाहे संसदीय हो या अधीनस्थ, अनुपालन की माँग करता है, वहाँ शासित लोगों को सीधे और विश्वसनीय रूप से कानून और विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा उसमें किए गए सभी परिवर्तनों और परिवर्धनों की सूचना दी जानी चाहिए। चाहे कानून को कानून का पालन करने की इच्छा रखने वाले 'ईमानदार अच्छे व्यक्ति' के दृष्टिकोण से देखा जाए या न्यायमूर्ति होम्स के 'बेईमानदार बुरे व्यक्ति' के दृष्टिकोण से, जो कानून से बचना चाहता है, कानून को अवश्य जाना जाना चाहिए, अर्थात्, इसे इस प्रकार बनाया जाना चाहिए कि इसे जाना जा सके। हम जानते हैं कि प्रत्यायोजित या अधीनस्थ विधान सर्वव्यापी हैं और शायद ही कोई ऐसा कार्य क्षेत्र हो जहाँ प्रत्यायोजित या अधीनस्थ विधायी शक्तियों द्वारा शासन संसदीय विधान द्वारा शासन से कम महत्वपूर्ण न हो, यदि अधिक नहीं। लेकिन संसदीय विधान के विपरीत, जो सार्वजनिक रूप से बनाया जाता है, प्रत्यायोजित या अधीनस्थ विधान अक्सर किसी मंत्री, सरकार के सचिव या अन्य आधिकारिक गणमान्य व्यक्ति के कक्षों में, बिना किसी बाधा के बनाया जाता है। इसलिए, यह आवश्यक है कि अधीनस्थ विधान, प्रभावी होने के लिए, किसी उपयुक्त तरीके से प्रकाशित या प्रख्यापित किया जाना चाहिए, चाहे ऐसा प्रकाशन या प्रख्यापन मूल विधान द्वारा निर्धारित हो या नहीं। यह तब ऐसे प्रकाशन या प्रख्यापन की तिथि

से प्रभावी होगा। जहाँ मूल विधान प्रकाशन या प्रख्यापन की विधि निर्धारित करता है, वहाँ उस विधि का पालन किया जाना चाहिए।"

(जोर दिया गया)

हालाँकि, यदि मूल कानून कानून के प्रकाशन या अधिसूचना के तरीके के बारे में चुप होता, और प्रकाशन के तरीके के रूप में आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन निर्धारित नहीं करता, तो उत्तरदाताओं के तर्कों पर कुछ विचार किया जा सकता था। लेकिन जब अधिनियम में स्पष्ट रूप से प्रावधान था कि कानून राजपत्र में प्रकाशन की आवश्यकता रखता है, तो यह आवश्यकता अनिवार्य हो गई। वास्तव में, बी.के. श्रीनिवासन वाद में, इस न्यायालय ने स्थिति स्पष्ट की, यदि मूल अधिनियम राजपत्र में प्रकाशन के बारे में चुप था:

"जहाँ मूल कानून मौन है, लेकिन अधीनस्थ विधान स्वयं प्रकाशन का तरीका निर्धारित करता है, वहाँ यदि उचित हो तो ऐसा प्रकाशन तरीका पर्याप्त हो सकता है। यदि अधीनस्थ विधान प्रकाशन का तरीका निर्धारित नहीं करता है या यदि अधीनस्थ विधान स्पष्ट रूप से अनुचित प्रकाशन तरीका निर्धारित करता है, तो यह तभी प्रभावी होगा जब इसे प्रथागत रूप से मान्यता प्राप्त आधिकारिक माध्यम, अर्थात् आधिकारिक राजपत्र या प्रकाशन के किसी अन्य उचित तरीके से प्रकाशित किया जाए। ऐसा अधीनस्थ विधान भी हो सकता है जो कुछ व्यक्तियों से संबंधित हो या छोटे स्थानीय क्षेत्रों तक सीमित हो। ऐसे वादों में अन्य माध्यमों से प्रकाशन या प्रख्यापन पर्याप्त हो सकता है।"

15. इस न्यायालय का *आइ.टी. सी. भद्राचलम पेपरबोर्ड्स बनाम मंडा/राजस्व अधिकारी, आंध्र प्रदेश - 1996 (6) एससीसी 634* में दिया गया निर्णय भी इस मुद्दे पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। उस वाद में, आंध्र प्रदेश गैर-कृषि भूमि मूल्यांकन अधिनियम, 1963 की

धारा 11 ने सरकार को आंध्र प्रदेश राजपत्र में प्रकाशित एक आदेश द्वारा किसी भी प्रकार की गैर-कृषि भूमि को कर से छूट देने की शक्ति प्रदान की थी। राज्य सरकार ने 17.12.1976 को जीओएम संख्या 201 जारी किया, जिसमें कुछ अनुसूचित क्षेत्रों में स्थापित होने वाले उद्योगों को प्रोत्साहन और रियायत के रूप में गैर-कृषि भूमि मूल्यांकन से छूट सहित कुछ छूट प्रदान की गई, जिनका उद्देश्य उन पिछड़े क्षेत्रों में तेजी से औद्योगीकरण प्रदान करना था। उक्त आदेश आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित नहीं किया गया था। इस न्यायालय द्वारा विचारित प्रश्नों में से एक यह था कि क्या सरकारी आदेश, जो राजपत्र में प्रकाशन की अनिवार्य आवश्यकता का पालन नहीं करता था, पर उस पर कार्य करने वाले व्यक्ति द्वारा सरकार के विरुद्ध वचनात्मक रोक के सिद्धांत का आह्वान करने और सरकारी आदेश के तहत लाभ का दावा करने के लिए इस आधार पर अवलंबन किया जा सकता है कि उसमें सरकार द्वारा जनता के सदस्यों से किया गया वादा या प्रतिनिधित्व शामिल है। इस न्यायालय ने माना कि अधिनियम की धारा 11 के अंतर्गत सरकारी आदेश को राजपत्र में प्रकाशित करने की आवश्यकता अनिवार्य है और जहाँ किसी अधिनियम के तहत सरकार द्वारा कोई कार्य (सरकारी आदेश जारी करना) केवल उसमें निर्धारित तरीके से ही किया जाना आवश्यक है, वहाँ अनिवार्य वैधानिक आवश्यकता का पालन न करने से वह कार्य (सरकारी आदेश जारी करना) अमान्य हो जाएगा और परिणामस्वरूप, सरकारी आदेश को न तो वैध और बाध्यकारी माना जा सकता है और न ही सरकार द्वारा प्रस्तुत किया गया कोई अभ्यावेदन, जिससे सरकार के विरुद्ध वचनबद्धता निषेध के सिद्धांत का आह्वान करके उस सरकारी आदेश का लाभ उठाने का कोई अधिकार बनता है। इस न्यायालय ने माना:

"30. श्री सोराबजी ने आगे तर्क दिया कि भले ही यह माना जाए कि राजपत्र में प्रकाशन अनिवार्य है, फिर भी जी.ओ.एम. संख्या 201 को एक अभ्यावेदन और एक

वादा माना जा सकता है और चूँकि अपीलकर्ता ने ऐसे अभ्यावेदन पर अपने नुकसान के लिए काम किया था, इसलिए सरकार को ऐसे अभ्यावेदन से पीछे हटने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। यह प्रस्तुत किया गया है कि सरकार को ऐसे अभ्यावेदन से पीछे हटने की अनुमति देने से अपीलकर्ता के प्रति पूर्वाग्रह होगा। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि जहाँ सरकार अपने प्रकट अधिकार के दायरे में कार्य करते हुए कोई अभ्यावेदन करती है, और यदि कोई अन्य व्यक्ति ऐसे अभ्यावेदन पर कार्य करता है, तो सरकार को ऐसे अभ्यावेदन से बाध्य माना जाना चाहिए और प्रक्रिया में किसी भी दोष या अनियमितता को माफ किया जा सकता है ताकि उसे वैध बनाया जा सके जो अन्यथा अमान्य होगा। अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि सरकार को जी.ओ.एम. संख्या 201 में निहित अपने वादे से पीछे हटने की अनुमति देना वस्तुतः उसे कानूनी धोखाधड़ी करने की अनुमति देने के समान होगा। इस तर्क की उचित समझ के लिए, यह आवश्यक है प्रशासनिक कार्य और कानून के तहत किए गए कार्य के बीच अंतर को ध्यान में रखना। यदि कानून यह अपेक्षा करता है कि कोई विशेष कार्य किसी विशेष तरीके से किया जाना चाहिए और यदि यह पाया जाता है, जैसा कि हमने पहले पाया है, कि सरकार द्वारा किया गया कार्य कानून की अनिवार्य आवश्यकताओं का पालन न करने के कारण अमान्य और अप्रभावी है, तो यह काफी विचित्र होगा यदि यह माना जाए कि ऐसे गैर-अनुपालन के बावजूद, यह वचनात्मक/न्यायसंगत रोक के नियम को लागू करने के उद्देश्य से एक 'वादा' या एक प्रतिनिधित्व है। ऐसे तर्क को स्वीकार करना कानून की अनिवार्य आवश्यकताओं को रद्द करने के समान होगा, साथ ही सरकार या अन्य निकाय को कानून के बाध्यकारी प्रावधानों की अनदेखी करके कार्य करने का लाइसेंस प्रदान

करना होगा। ऐसा करने से अधिनियम के अनिवार्य प्रावधान निरर्थक और अनावश्यक हो जाएँगे। जहाँ क्षेत्र किसी अधिनियम द्वारा अधिसूचित है, वहाँ कार्यपालिका को उसके अनुसार कार्य करना होगा, विशेष रूप से जहाँ प्रावधान अनिवार्य प्रकृति के हैं। किसी भी प्रशासनिक कार्रवाई या कानून द्वारा निर्धारित कार्य को उसके अनुसार करने के अलावा किसी अन्य तरीके से करने की कोई गुंजाइश नहीं है। जहाँ, निःसंदेह, मामला किसी सक्षम विधानमंडल द्वारा बनाए गए कानून द्वारा शासित नहीं है, वहाँ कार्यपालिका अपनी कार्यकारी क्षमता में कार्य कर सकती है क्योंकि राज्य की कार्यकारी शक्ति उन मामलों तक विस्तारित होती है जिनके संबंध में राज्य विधानमंडल को कानून बनाने की शक्ति है (संविधान का अनुच्छेद 162)। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव हमारी संवैधानिक योजना और जनहित के विरुद्ध है। इसका वस्तुतः अर्थ यह होगा कि वचन-विरोध के नियम का प्रयोग कानून के प्रावधानों को विफल करने के लिए किया जा सकता है, जबकि उक्त नियम, यह सर्वविदित है, किसी वैधानिक प्रावधान के विरुद्ध लागू नहीं होता है। कानून की पवित्रता और कानून की अनिवार्य आवश्यकता की पवित्रता को विरोध के नियमों का सहारा लेकर विफल नहीं होने दिया जा सकता। विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत किसी भी निर्णय में यह नहीं कहा गया है कि जहाँ कोई कार्य किसी कानून के अनिवार्य प्रावधान का उल्लंघन करते हुए किया जाता है, वहाँ भी ऐसे कार्य को वचनात्मक/न्यायसंगत विबंधन के नियम को लागू करने का आधार बनाया जा सकता है। इसके अलावा, जब सरकार अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर कार्य करती है, जैसा कि इस वाद में है, तो यह कहना मुश्किल है कि वह अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर कार्य कर रही है।

16. उपरोक्त के मद्देनजर, इस तर्क को स्वीकार करना संभव नहीं है कि दिनांक 4.9.1991 की अधिसूचना में निहित कानून आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन के अभाव में भी प्रभावी या प्रवर्तनीय हो गया। उच्च न्यायालय ने यह मानने में त्रुटि की कि शिक्षक समयबद्ध पदोन्नति योजना से संबंधित कानून के लाभ के हकदार हो गए, जब प्रबंधन समिति द्वारा बनाए गए उक्त कानून को कुलाधिपति ने सहमति दे दी थी, भले ही वह राजपत्र में प्रकाशित नहीं हुआ था। उच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी करने में भी त्रुटि की कि प्रकाशन न करना अनुचित और मनमाना था, क्योंकि इसमें कुलाधिपति द्वारा दिनांक 19.3.1996 के अपने आदेश में अपूर्ण कानून पर अपनी सहमति वापस लेने के लिए दिए गए वैध कारणों की अनदेखी की गई थी।

17. इसलिए हम इन अपीलों को स्वीकार करते हैं, उच्च न्यायालय के आदेश को खारिज करते हैं और उत्तरदाताओं द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष दायर विनिर्दिष्ट आदेश याचिकाओं को खारिज करते हैं।

बी.बी.बी.

अपील स्वीकार की गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।